

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।  
“ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त कृपाशील, बड़ा ही दयावान है।”

## इस्लाम और सन्यास

आखिरत की मुक्ति और कल्याण के सम्बन्ध में धर्मों का सामान्य मत यह है कि इस संसार से विमुख होकर पुर्णतः एकांत ग्रहण कर लिया जाए और दुनिया के समस्त आस्वादानों और कामनाओं से अपने आप को मुक्त करके जंगलो, पहाड़ो और गुफाओं में जीवन व्यतीत किया जाए।

भारतीय धर्मों में जैन धर्म की मान्यता भी यही है। उसके सबसे बड़े गुरु स्वामी महावीर ने संसार -त्याग का जीवन अपनाया और इस संसार से इतना पहलू बचाकर रहे कि उन्हें सांसारिक वस्त्र का एक सूत्र भी अपने शरीर के लिए स्वीकार्य न हुआ। वे बिलकुल नग्न रहते थे, इसीलिए आज भी उनके मानने वाले वे लोग जो भक्ति और बन्दगी के सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करना चाहते हैं, स्वामी महावीर के अनुसरण में बिलकुल नंगा रहना अपने लिए अनिवार्य जानते हैं और दुनिया की कोई विशेष सामग्री भी अपने साथ नहीं रखते।

इसी प्रकार बौद्ध धर्म की दृष्टि में भी पारलौकिक मोक्ष और सफलता के लिए आवश्यक है कि संसार और संसार की समस्त चीजों से मुनष्य अपने सम्बन्ध तोड़े, इसीलिए इस धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध ने अपने माता-पिता, पत्नी और सन्तान और राज-पाट को त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया और इसी को मुक्ति का साधन ठहराया। स्वयं हिन्दू धर्म में जीवन-यात्रा की जिन मंजिलों का उल्लेख मिलता है, उनमें पहली मंजिल ज्ञान-अर्जन की हैं, दूसरी गृहस्थी की और उसके बाद वानप्रस्थ की मंजिल आती है और अन्त में वह मंजिल आती है जब कि मनुष्य पूर्ण रूप से संन्यासी हो जाता है। मनुस्मृति में है कि जब गृहस्थ के सिर के बाल सफेद हो जाएं और त्वचा में झुर्रियां दिखाई देने लगें और उसका बेटा पुत्रवान हो जाए, उस समय उसे चाहिए कि वह वन में निवास ग्रहण करे और हर प्रकार के नगर-आहार और वस्त्रादि और सभी उत्कृष्ट पदार्थों को छोड़ दे, और अपनी पत्नी को अपने पुत्रों के पास छोड़ दे या फिर उसकी पत्नी भी उसके साथ जंगल में त्याग का जीवन बिताए, लेकिन यह वानप्रस्थ आश्रम में है। संन्यास की जिन्दगी में पत्नी के साथ रहने और किसी तरह के सांसारिक सम्बन्ध रखने की गुंजाइश नहीं है।

अगर कोई धर्मपरायण और संन्यासी व्यक्ति बाल्यावस्था के पश्चात ही संन्यास ग्रहण करे और गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न अपनाए तो इसकी भी पूरी गुंजाइश है, बल्कि कुछ परिस्थितियों में इसको उत्तम और श्रेष्ठ समझा गया है।

परन्तु इसके विपरीत इस्लाम दुनिया में रहने और उसकी नेमतों से लाभान्वित होने को पारलौकिक मोक्ष की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं समझता, बल्कि इस्लाम तो आया ही इसीलिए है कि वह मानव को दुनिया में रहना सिखाए। वह तो अपने सिद्धान्तों के अन्तर्गत शासन चलाने को भी एक बड़ी नेकी और पारलौकिक मुक्ति का साधन बताता है। हदीस की किताबों, सहीह बुखारी और मुस्लिम, की बहुत मशहूर हदीस है कि अल्लाह के रसूल(सल्ल 0) ने फरमाया- “सात लोग हैं जिन्हे अल्लाह (आखिरत में) अपनी दयालुता की छाया में जगह देगा, जबकि उसकी छाया के अलावा कोई छाया न होगी। फिर आप (सल्ल 0) ने उन सात व्यक्तियों को बयान करते हुए सबसे पहले फरमाया, ‘न्याय षासक’।”

इस्लाम एक सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था है जो जिन्दगी के सभी विभागों में इंसान का मार्गदर्शन करता है। इसीलिए इसकी सारी शिक्षाएं उन्हीं लोगों के लिए है जो इस संसार में रहते और संसार के प्रशासन को चलाते हैं, न कि उन लोगों के लिए जो दुनिया से अलग-थलग होकर जंगलो, पहाड़ो और आश्रमों की राह लेते हैं।

आचरण और चरित्र की जो उच्चता और गुण, दुनिया आश्रमों और मठों में तलाश करती है, इस्लाम उनको जिन्दगी के प्रत्यक्ष हंगामों और व्यवसायों में पैदा करना चाहता है। वह चाहता है कि दुनिया के सारे ही लोग, चाहे वे किसी

विभाग से सम्बद्ध हो, अपने अन्दर इस्लाम के अभीष्ट गुण पैदा करें। चाहे वे लोग शासक हों या शासित, जज हों या लोगसभा के सदस्य, फौज और पुलिस से उनका सम्बन्ध हो या आम जनता से, शिक्षक हो या विद्यार्थी तात्पर्य यह कि जो भी हो, वे सब अपने अन्दर ये खूबियाँ पैदा करें, जिनकी शिक्षा इस्लाम देता है।

इस्लाम की दृष्टि में संसार-त्याग और सन्यास सत्य धर्म के प्रतिकूल भी है और दुनिया में बिगाड़ और फसाद का कारण भी बनता है। इसीलिए कुरआन मजीद में ईसाईयों के यहाँ प्रचलित सन्यास का खण्डन करते हुए उसे अस्वाभाविक और अप्रषंसनीय तरीका बताया गया है। कुरआन में है-

“.....हमने नूह और इब्राहिम को रसूल बना कर भेजा और उनकी सन्तति में नुबूवत और किताब रखी तो कुछ तो उनमें से राह पर रहे और उनमें बहुत-सेमोल्लंघन करने वाले है।

फिर उन (रसूलों) के पद-चिन्हों पर हम अपने और रसूल भेजते रहे, फिर मरयम के पुत्र ईसा को भेजा और हमने उसे 'इन्जील (ठपड़सम)' प्रदान की, और जो लोग उसके पीछे चले, उनके दिलों में हमने करुणा और दयालुता रख दी, और रहबानियत (संसार-त्याग) की प्रथा उन्होंने स्वयं निकाला, हमने उन्हें इसका आदेश नहीं दिया था, दिया था तो बस अल्लाह की प्रसन्नता चाहने का। तो इन्होंने उसका जैसा पालन करना चाहिए था, नहीं किया। तो उनमें से जो ईमान लाए थे, उन्हें हमने उसका बदला दिया। और उनमें अधिकतर अवज्ञाकारी है।” (सूरा-57 हदीद - 26: 27)

इस आयत में 'रहबानियत' शब्द आया है। इस शब्द की व्याख्या और पूरी आयत की टीका वर्तमान काल के महान इस्लामी विद्वान और कुरआन मजीद के प्रसिद्ध टीकाकार मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह 0) ने अपनी प्रसिद्ध कुरआन भाष्य 'तफहीमुल कुरआन', भाग पाँच में की है।

मौलाना ने लिखा है कि इसकी धातु र-ह-ब है, जिसका अर्थ 'भय' है। रहबानियत का अर्थ है डरे रहने का रास्ता और रोहबानियत का अर्थ है डरे हुए लोगों का पंथा। परिभाषा में इससे मुराद है किसी व्यक्ति का डर कारण (चाहे वह किसी के अत्याचार का भय हो, या दुनिया के फितनों का भय या अपने मन या नफस की कमजोरियों का भय) दुनिया छोड़ देना और सांसारिक जीवन से भागकर जंगलों और पहाड़ों में पनाह लेना या सबसे कटकर एकान्त में जा बैठना।

इस आयत की रौशनी में मौलाना ने लिखा है कि ईसाईयों पर अल्लाह ने सन्यास को फर्ज नहीं किया था। आगे लिखा है कि संन्यास एक गैर-इस्लामी चीज है और यह कभी सत्य धर्म में शामिल नहीं रही है। यही बात है जो नबी (सल्ल 0) ने फरमाई है, “इस्लाम में कोई सन्यास नहीं।” (मुसनाद अहमद) एक और हदीस में नबी (सल्ल 0) ने कहा, “ इस उम्मत का सन्यास अल्लाह के रास्ते में जिहाद है। ” (मुसनाद अहमद, मुसनाद अबी याला) अर्थात् इस उम्मत के लिए आध्यात्मिक उन्नति का रास्ता यह नहीं है कि आदमी संसार त्याग दे, बल्कि यह है कि आदमी अल्लाह के रास्ते में जिहाद करे। और यह उम्मत फितनों (उपद्रवों) से डरकर जंगलो और पहाड़ो की तरफ नहीं भागती, बल्कि अल्लाह की राह में जिहाद करके उनका मुकाबला करती है। बुखारी और मुस्लिम दोनो ने रिवायत की है, “ सहाबा में से एक सहाबी ने कहा, “मैं सदैव पूरी रात नमाज पढ़ा करूंगा।” दूसरे ने कहा, मैं हमेशा रोजा रखूंगा और कभी नागा न करूंगा। तीसरे ने कहा, ' मैं कभी शादी न करूंगा और औरत से कोई संबंध न रखूंगा।’

अल्लाह के रसूल (सल्ल 0) ने उनकी ये बातें सुनी तो फरमाया ' अल्लाह की कसम! मैं तुमसे अधिक अल्लाह से डरता और उसकी अवज्ञा से बचता हूँ, परन्तु मेरा तरीका यह है कि रोजा रखता भी हूँ और नहीं भी रखता, रातों को नमाज भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और औरतों से निकाह भी करता हूँ। जिसको मेरा तरीका पसन्द न हो उसका मुझसे कोई संबंध नहीं।' हजरत अनस (रजि0) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल(सल्ल 0) फरमाया करते थे, “ अपने ऊपर सख्ती न करो कि अल्लाह तुम पर सख्ती करे। एक गिरोह ने यही कठोर अपनाई थी तो अल्लाह ने भी फिर उसे सख्त पकड़ा। देख लो उनके वे अवशेष सन्यास गृहो और गिरजाघरो में मौजूद है।” (अबू दाउद)

सन्यास और संसार-त्याग का रास्ता अपनाकर ईसाई दोहरी गलती में ग्रस्त हो गए। एक गलती यह कि अपने ऊपर वे अंकुश लगाए, जिनका अल्लाह ने कोई आदेश नहीं किया था और दूसरी गलती यह कि जिन पाबन्दियों को अपनी दृष्टि में अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने का जरीआ समझकर खुद अपने ऊपर लगा बैठे थे, उनको न निभा सके और ऐसी हरकतों की जिनसे अल्लाह की प्रसन्नता के बजाय उल्टा उसका प्रकोप मोल ले बैठे।

इस बात को पूरी तरह समझने के लिए एक नजर ईसाई रहबानियत (सन्यास) के इतिहास पर डाल लेनी चाहिए। हजरत ईसा (अलैहि0) के पञ्चात दो सौ वर्ष तक ईसाई चर्च सन्यास से अपरिचित था, किन्तु आरंभ ही से ईसाइयत में इसके रोगाणु पाए जाते थे, और ऐसे विचार भी उसके अन्दर पाए जाते थे जो इस चीज को जन्म देते हैं। त्याग और ब्रह्मचर्य को नैतिक आदर्ष (आइडियल) कहना और सन्यास जीवन को षादी-विवाह और सांसारिक व्यवसाय के जीवन की अपेक्षा श्रेष्ठ और उत्तम समझना ही सन्यास की बुनियाद है, और ये दोनो चीजे मसीहीयत मे शुरू से मौजूद थी। विशेष रूप से ब्रह्मचर्य को पवित्रता का पर्याय समझने के कारण चर्च में धार्मिक सेवा करनेवालों के लिए यह बात अप्रिय समझी जाती थी कि वे षादी करे, बाल-बच्चोंवाले हो और गृहस्थी के बखेड़ों में पड़े। इसी चीज ने तीसरी शताब्दी के पहुँचने तक एक फितने का रूप धारण कर लिया और सन्यास एक संक्रामक रोग की तरह मसीहियत में फैलना शुरू हुआ। ऐतिहासि रूप से इसके तीन बड़े कारण थे-

एक, यह कि प्राचीन अनेकेश्वरवादी समाज में कामवासना, दुष्चरित्रता और दुनियापरस्ती जिस जोर के साथ फैली हुई थी, उसका तोड़ करने के लिए ईसाई विद्वानों ने सन्तुलित मार्ग अपनाए के बजाय इन्तिहापसन्दी का रास्ता अपनाया। उन्होंने पाकदामनी पर इतना बल दिया कि सिरे से स्त्री और पुरुष का संबंध

ही अपवित्र समझा जाने लगा, चाहे यह संबंध निकाह (विवाह) ही के रूप में क्यों न हो। उन्होंने दुनियादारी के विरुद्ध इतनी कट्टरता दिखाई कि अन्ततः एक दीनदार आदमी के लिए सिरे से किसी प्रकार की सम्पत्ति रखना ही गुनाह बन गया और नैतिकता का मापदण्ड यह हो गया कि आदमी बिलकुल निर्धन और प्रत्येक रूप से संसार-त्यागी हो। इसी प्रकार अनेकेश्वरवादी समाज की सुख एवं वासना प्रियता के उत्तर में वे इस चरम सीमा पर जा पहुँचे कि सुख-त्याग, आत्म-दमन और इच्छाओं का उन्मूलन करता ही नैतिकता का लक्ष्य बन गया और भांति-भांति की तप-तपस्याओं से शरीर को कष्ट पहुँचाना आदमी के आध्यात्म की पूर्णता और उसका प्रमाण समझा जाने लगा।

दूसरे, यह कि ईसाइयत जब सफलता-काल में प्रवेश पाकर जनता में फलनी शुरू हुई तो अपने धर्म के प्रचार और विस्तार के उल्लास में चर्च हर उस बुराई को अपने अधिक्षेत्र में दाखिल करता चला गया, जो लोकप्रिय थी। प्राचीन इष्टदेवों के स्थान पर महापुरुषों की पूजा होने लगी। होरस (भ्वतने) और इतिहास(प्पे) की मूर्तियों के स्थान पर मसीह और मरियम की मूर्तियां पूजी जाने लगीं। सेटरनेलिया(ेंजनतदंसपं) की जगह क्रिसमस का उत्सव मनाया जाने लगा। प्राचीन काल के तावीज-गन्डे, मन्त्र-तन्त्र, षकुन निकालना तथा भविष्यवाणी औ भूत-प्रेत भगाने के काम सब ईसाई सन्तो ने पुरू कर दिए। इसी प्रकार चूंकि जन-साधारण उस व्यक्ति को खुदा तक पहुँचा हुआ समझते थे जो गन्दा और नन्गा हो और किसी भट या खोह में रहे, इसलिए ईसाई चर्च में भक्ति की यही धारणा लोकप्रिय हो गई। और ऐसे ही लोगो के चमत्कारों के किस्सों से ईसाइयों के यहां 'सन्त कथाएँ' जैसी किताबों की भरमार हो गई।

तीसरे, यह कि ईसाइयों के पास दीन की सीमाएं निर्धारित करने के लिए कोई विस्तृत धर्म-विधान और कोई स्पष्ट तरीका मौजूद न था। मूसवी धर्म-विधान को वे छोड़ चुके थे और अकेले इन्जील के अन्दर पूर्ण रूप से कोई आदेशावली नहीं पाई जाती थी, इसलिए मसीही विद्वान कुछ तो बाहर के दर्षनशास्त्रों और रंग-ढंग से प्रभावित होकर और कुछ स्वयं अपनी अभिरुचियों के कारण तरह-तरह की नई-नई बातों को दीन में शामिल करते चले गए। सन्यास भी इन्ही नई बातों में से एक था। ईसाई धर्म के विद्वानों और ज्ञानियो ने उसका दर्षन-शास्त्र और उसकी कार्य-प्रणाली बुद्ध धर्म के भिक्षुओं से, हिन्दु योगियों और सन्यासियों से, प्राचीन मिस्री फकीरों (।दबीवतपजमे) से, ईरान के मानी सम्प्रदाय के लोगो से और अफलातून तथा फलातीनूस के अनुयायी रहस्यवादियों से लिया और उसी को आत्मशुद्धि की विधि, आध्यात्मिक विकास और ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करने का साधन ठहरा लिया।

इसी गलती में पड़ने वाले कोई साधारण श्रेणी के लोग न थे। तीसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी (अर्थात् कुरआन-अवतरण के समय) तक जो लोग पूर्व और पश्चिम में मसीहियत के बड़े-बड़े विद्वान, महागुरु और अधिनायक माने जाते हैं, जैसे सेन्ट अथानासेविस, सेन्ट बासिल, सेंट गिरिगोरी नाजियानजीन, सेन्ट कराई सूस्टम, सेन्ट ऐम्ब्रूज, सेन्ट जीरूम, सेन्ट आगस्टाइन, सेन्ट बैनेडिक्ट, महान गिरीगोरी आदि, सबके सब स्वयं सन्यासी और सन्यास के बड़े ध्वजावाहक थे। इन्ही के प्रयासों से चर्च में सन्यास का प्रचलन हुआ।

इतिहास से मालूम होता है कि ईसाईयों में सन्यास का आरम्भ मिस्र से हुआ। इसका संस्थापक सेन्ट ऐन्थोनी था जो सन् 250 ई 0 में पैदा हुआ और 350 ई 0 में संसार से चला गया। उसे पहला ईसाई सन्यासी कहा जाता है। उसने फय्यूम के इलाके में पस्पीर के स्थान पर (जो अब देरूलमैमून के नाम से प्रसिद्ध है) पहला सन्यास आश्रम स्थापित किया। उसके बाद दूसरा आश्रम उसने लाल सागर के तट पर स्थापित किया, जिसे अब देरमारू अनतुनियूस कहा जाता है। ईसाईयों में सन्यास के मूल सिद्धान्त उसी के लेखों तथा आदेशों से उद्भूत है। इस प्रारम्भ के बाद यह सिलसिला मिस्र में सैलाब की तरह फैल गया और जगह-जगह सन्यासी पुरुषों और स्त्रियों के लिए आश्रम या मठ स्थापित हो गए जिनमें से कुछ में तीन-तीनहजार सन्यासी एक ही समय में रहते थे। सन् 325 ई 0 मिस्र ही के अन्दर एक और ईसाई महापुरुष पाखूमियुस उत्पन्न हुआ, जिसने दस बड़े आश्रम सन्यासी पुरुष और स्त्रियों के लिए बनाए। इसके बाद यह सिलसिला पाम और फलस्तीन, अफ्रीका और यूरोप के विभिन्न देशों में फैलता चला गया। चर्च व्यवस्था को शुरू-शुरू में इस सन्यास के मामले में सख्त उलझन का सामना करना पड़ा, क्योंकि वह संसार-त्याग और ब्रह्मचर्य तथा गरीबी और निर्धनता को आध्यात्मिक जीवन का आदर्श तो समझता था, परन्तु संयासियों की तरह शादी-विवाह और संतान उत्पन्न करने तथा सम्पत्ति रखने को पाप भी घोषित नहीं कर सकता था। अन्त में सेन्ट अथानासियूस (मृत्यु 373 ई 0), सेन्ट बासिल (मृत्यु 379 ई 0), सेन्ट आगस्टाइन (मृत्यु 430 ई 0) और महान गिरिगोरी (मृत्यु 609 ई 0) जैसे लोगो के प्रभाव से सन्यास के बहुत-से सिद्धान्त चर्च-व्यवस्था में विधिवत रूप से दाखिल हो गए। अपने धर्म के अन्दर उन्होंने जो नई बातें इस सन्यास के रूप में शामिल कर डाली थी उनकी कुछ विशेषताएं थी, जिनका संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है:

1-कठोर तपस्याओं और नित नए तरीको से अपने शरीर को याएनाएं देना। इस मामले में प्रत्येक सन्यासी दूसरे से आगे बढ़ जाने की चेष्टा करता था। ईसाई महापुरुषों की कथाओं में इन लोगो के जो चमत्कार बयान किये गए हैं, वे कुछ इस प्रकार के हैं-

इस्कन्द्रिया का सेन्ट मकारियूस हर समय अपने शरीर पर अस्सी पौंड का बोझ उठाए फिरता था। छः महीने तक वह एक दलदल में सोता रहा। जहरीली मक्खियां उसके नंगे शरीर को काटती रहीं। उसके मुरीद सेन्ट यूसिबियूस ने अपने पीर से भी बढ़कर तपस्या की वह एक सौ पचास पौंड का बोझ उठाए रखता था और तीन वर्ष तक एक सूखे कुँए में पड़ा रहा। सेन्ट साबियूस केवल वह मकई खाता था जो महीने भर पानी में भीग कर बदबूदार हो जाती थी। सेन्ट बेसारियून 40 दिन तक कांटेदार झाड़ियों में पड़ा रहा और चालीस वर्ष तक उसने जमीन को पीठ नहीं लगाई। सेन्ट पाखूमियूस ने पन्द्रह वर्ष और एक उल्लेख के अनुसार पचास वर्ष

जमीन को पीठ बिना गुजार दिए। एक सन्त सेन्ट जान तीन वर्ष तक इबादत में खड़ा रहा। इस पूरी अवधि में वह न कभी बैठा, न लेटा। आराम के लिए बस एक चट्टान का सहारा ले लेता था, और उसका भोजन केवल वह प्रसाद था जो हर रविवार को उसके लिए लाया जाता था। सेन्ट सीमीयून स्टाइलाइट (390-449 ई 0) जो ईसाइयों के उच्च श्रेणी के महापुरुषों में गिना जाता है, हिरायस्टर से पहले पूरे चालीस दिन उपवास करता था। एक बार वह पूरे एक वर्ष तक टांग पर खड़ा रहा। प्रायः वह अपने आश्रम से निकलकर एक कुँए में जा रहता था। अन्ततः में उसने उत्तरी सीरिया के सीमान किले के निकट साथ फिट ंऊँचा एक स्तम्भ बनवाया, जिसका ऊपरी हिस्सा केवल तीन फिट के घेरे में था और ऊपर कटहरा बनवा दिया गया था। इस स्तम्भ पर उसने पूरे तीस वर्ष व्यतीत कर दिए। धूप, वर्षा, सर्दी, गर्मी, सब उस पर से गुजरती रहती थी, और वह कभी स्तम्भ से न उतरता था। उसके अनुयायी सीढी लगाकर उसको खाना पहुँचाते और उसकी गन्दगी साफ करते थे। फिर उसने एक रस्सी लेकर अपने आप को उस स्तम्भ से बांध लिया, यहां तक कि रस्सी उसके मांस में गढ़कर छिप गई। मांस सड़ गया और उस में कीड़े पड़ गए। जब कोई कीड़ा उसके जखम से गिर जाता तो वह उसे उठाकर फिर जखम ही में रख लेता और कहता, “खा, जो कुछ प्रभु ने तुझे दिया है।” ईसाई लोग दूर-दूर से उसके दर्शन के लिए आते थे। जब वह मरा तो आम ईसाइयों का निर्णय यह था कि वह ईसाई ऋशियों की सबसे अच्छी मिसाल था।

उस युग के ईसाई संतो की जो खूबियां बयान की गई हैं, वे ऐसी ही मिसालों से भरी पड़ी हैं। किसी वली की विशेषता यह थी कि तीस साल तक बिलकुल मौन रहा, और कभी उसे बोलते न देखा गया। किसी ने अपने आप को एक चट्टान से बांध रखा था, कोई जंगलों में मारा-मारा फिरता और घास-फूस खाकर गुजारा करता। कोई भारी बोझ हर समय उठाए फिरता, कोई बेड़ियों और जंजीरों से अपने अंगों को जकड़े रखता। कुछ महानुभाव जानवरों के भटों या सूखे कुँओं या पुरानी कब्रों में रहते थे, और कुछ दूसरे महापुरुष हर समय नंगे रहते और अपने गुप्तांग अपने लम्बे-लम्बे बालों से छिपाते तथा जमीन पर रेंगकर चलते थे। ऐसे ही महापुरुषों के चमत्कारों की चर्चाएं हर तरफ होती थी, और उनके मरने के बाद उनकी हड्डियां आश्रमों से सुरक्षित रखी जाती थी। मैंने स्वयं सीना पहाड़ के नीचे सेन्ट केथराइन के आश्रम में ऐसी ही हड्डियों की एक पूरी लाइब्रेरी सजी हुई देखी है, जिसमें कहीं महापुरुषों की खोपड़ियां ढंग से रखी हुई थी, कहीं पाव की हड्डियां और कहीं हाथों की हड्डियां, और एक महापुरुष का तो पूरा ढांचा ही पीषे की अलमारी में रखा हुआ था।

2-उनकी दूसरी विशेषता यह थी कि वे हर समय गन्दे रहते और सफाई से बहुत बचते थे। नहाना या शरीर को पानी लगाना उनके निकट ईश-भक्ति के प्रतिकूल था। शरीर की स्वच्छता को वे आत्मा की गंदगी समझते थे। सेन्ट अथानासियस बड़ी आस्था के साथ सेन्ट ऐन्थोनी की यह खूबी बयान करता है कि उसने मरते दम तक कभी अपने पांव नहीं धोए। सेन्ट अब्राहम जब से मसीहियत में दाखिल हुआ, पूरे पचास वर्ष उसने ने मुँह धोया, न पाँव। एक प्रमुख सन्यासिनी कुमारी सिलबिया ने उम्र भर अपनी उँगलियों के सिवा शरीर के किसी अंग को पानी नहीं लगने दिया। एक कान्वेन्ट की एक सौ तीस सन्यासिनियों की प्रशंसा में लिखा गया है कि उन्होंने कभी अपने पाँव नहीं धोए, और स्नान का तो नाम सुनकर ही उनके बदन में कंपकपी तारी हो जाती थी।

3-इस सन्यास पे वैवाहिक जीवन को व्यवहारतः बिलकुल हराम कर दिया और विवाह के संबंध को तोड़ फेंकने में बड़ी निर्दयता से काम लिया। चौथी और पाँचवी शताब्दी के सारे धार्मिक लेख इस विचार से भरे हुए हैं कि ब्रह्मचर्य सबसे नैतिक मूल्य है, और पाकदामनी का अर्थ यह है कि आदमी यौन-संबंधों से पूर्णतः बचा रहे, चाहे वह पति-पत्नी का संबंध ही क्यों न हो। पवित्र आध्यात्मिक जीवन का कमाल यह समझा जाता था कि आदमी अपने मन को बिलकुल मार दे और उसमें शारीरिक सुख की कोई इच्छा तक शेष न छोड़े। इन लोगों के निकट इच्छाओं का दमन इसलिए आवश्यक था कि इससे पाषण्डिकता को बल मिलता है,

उनकी दृष्टि में सुख (भोग विलास) और पाप समानार्थक थे, यहाँ तक कि प्रसन्नता भी उनकी निगाह में ईश विस्मरण का पर्याय थी। सेन्ट बासिल हँसने और मुस्कराने तक को वर्जित ठहराता है। इन्हीं धारणाओं के कारण स्त्री और पुरुष के बीच शादी का संबंध उनके यहाँ बिलकुल अपवित्र घोषित हो गया था। सन्यासी के लिए आवश्यक था कि वह शादी करना तो दूर की बात, औरत की शक्ल तक न देखे और अगर विवाहित हो तो पत्नी को छोड़कर निकल जाए। पुरुषों की तरह स्त्रियों के दिल में भी यह बात बिठाई गई थी कि अगर वे स्वर्ग-राज्य में प्रवेश पाना चाहती हैं तो हमेशा कुंवारी रहें और अगर पहले से विवाहित हों तो अपने पतियों से अलग हो जाएं। सेन्ट जीरूम जैसा प्रमुख मसीही विद्वान कहता है कि जो स्त्री मसीह के लिए सन्यासी बनकर आजीवन कुंवारी रहे, वह मसीह की वधु है और उस स्त्री की माँ के प्रभु, अर्थात् मसीह की सास (डवजीमत.पद सं. व. िवीतपेज) होने का श्रेय प्राप्त है। एक और स्थान पर सेन्ट जीरूम कहता है कि पाकदामनी की कुल्हाड़ी से वैवाहिक संबंध की लकड़ी को काट फेंकना ईश-कामना में रत व्यक्ति का सर्वप्रथम कर्तव्य है। इन शिक्षाओं के कारण धार्मिक भावना के आविर्भाव के बाद एक मसीही पुरुष या एक मसीही स्त्री पर उसका पहला प्रभाव यह होता था कि उसका सुखमय वैवाहिक जीवन हमेशा के लिए समाप्त हो जाता था। और चूंकि मसीहियत में तलाक और जुदाई का रास्ता बन्द था, इसलिए विवाह के बन्धन में रहते हुए भी पति और पत्नी एक-दूसरे से जुदा हो जाते थे। सेन्ट नाइलस दो बच्चों का बाप था। जब उस पर सन्यास का दौरा पड़ा तो उसकी पत्नी रोती रह गई और वह उससे अलग हो गया। सेन्ट अम्मून ने शादी की पहली रात ही अपनी दुल्हन को वैवाहिक संबंध की अपवित्रता पर उपदेश दिया और दोनों ने सहमत होकर निष्चय कर लिया कि जीते-जी एक दूसरे से अलग रहेंगे। सेन्ट अब्राहम शादी की पहली रात ही अपनी पत्नी को छोड़कर फरार हो गया। यही हरकत सेन्ट ऐलेक्सिस ने की। इस प्रकार की घटनाओं से ईसाई महापुरुषों की कथाएं भरी पड़ी हैं।

चर्च की व्यवस्था तीन शताब्दियों तक अपनी सीमाओं में अतिवाद पर आधारित इन धारणाओं से किसी न किसी तरह संघर्ष करती रही। उस जमाने में एक पादरी के लिए ब्रह्मचारी होना अनिवार्य न था। अगर उसने पादरी के पद पर नियुक्त होने से पहले शादी कर ली हो तो वह पत्नी के साथ रह सकता था, परन्तु नियुक्ति के बाद शादी करना उसके लिए वर्जित था। यह बात भी थी कि किसी ऐसे व्यक्ति को पादरी नियुक्त नहीं किया जा सकता था, जिसने किसी विधवा या तलाक पाई हुई स्त्री से शादी की हो या जिसकी दो पत्नियां हो,

या जिसके घर में दासी हो। धीरे-धीरे चौथी शताब्दी में यह विचार पूरी तरह जोर पकड़ गया कि जो व्यक्ति चर्च में धार्मिक-सेवा करता हो उसके लिए विवाहित होना बड़ी घृणा की बात है। 362 ई 0 की गिगरा परिषद (व्वनदबपस व िळमदहत्तं) अन्तिम परिषद थी जिसमें इस प्रकार के विचारों को धर्म विरुद्ध घोषित किया गया, किन्तु इसके थोड़े ही समय के बाद 384 ई 0 की रोमन सीनाड ने सभी पादरियों को मषविरा दिया कि वे वैवाहिक संबंधों से किनारा कर ले, और दूसरे साल पोप साइरीकियस ने आदेश दिया कि जो पादरी शादी करे या वैवाहिक होने की सूरत में अपनी पत्नी से संबंध रखे, उस को पदव्युत कर दिया जाए। सेन्ट जीरूम, सेन्ट ऐम्बूर्ज और सेन्ट आगस्टाइन जैसे महान विद्वानों ने बड़े जोर-शोर से इस फैसले का समर्थन किया और थोड़े से विरोध के बाद पष्चिमी चर्च में यह पूरी सख्ती के साथ लागू हो गया। उस समय अनेक परिषदें इन शिकायतों पर विचार करने के लिए आयोजित हुईं कि जो लोग पहले से शादीशुदा थे, वे धार्मिक सेवाओं पर नियुक्त होने के बाद भी अपनी पत्नियों के साथ 'अवैध' संबंध रखते हैं। अन्ततः उनके सुधार के लिए ये नियम बनाए गए कि वे खुले स्थानों पर सोएँ, अपनी पत्नियों से कभी भी एकांत में न मिलें और उनकी मुलाकात के समय कस से कम दो व्यक्ति मौजूद हो। सेन्ट गेरीगोरी एक पादरी की प्रपंसा में लिखा है कि चालीस वर्ष तक वह अपनी पत्नी से अलग रहा, यहाँ तक कि मरते समय भी जब उसकी पत्नी उसके निकट गई तो उसने कहा, "औरत! दूर हट जा।"

4-सबसे ज्यादा हृदय-विदारक अध्याय इस सन्यास का यह है कि इसने माँ-बाप, भाई-बहिनों और सन्तान तक से आदमी का संबंध काट दिया। मसीही संतो की दृष्टि में औलाद के लिए माँ-बाप का प्रेम, माँ-बाप के लिए औलाद का प्रेम, भाई-बहिनों का प्रेम भी एक पाप था। उनकी दृष्टि में आध्यात्मिक विकास के लिए यह अनिवार्य था कि मनुष्य इन सारे सम्बन्धों को तोड़ दे। मसीही संतो की कथाओं में उसके सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी हृदय-विदारक घटनाएं मिलती हैं, जिन्हें पढ़कर अपने धैर्य को बाकी रखना। इन्सान के लिए मुश्किल हो जाता है। एक सन्यासी इवागिरियस (म्अंहतपने) वर्षों से बयाबान में तपस्याएं कर रहा था। एक दिन अचानक उसके पास उसकी मां और उसके बाप के पत्र पहुंचे, जो वर्षों से उस की जुदाई में तड़प रहे थे। उसे भय हुआ कि कहीं इन पत्रों को पढ़कर उसके दिल में इन्सानी मुहब्बत का भाव न जाग उठे, उसने उनको बिना खोले ही तत्काल आग में झोंके दिया। सेन्ट थ्योडोरस की मां और बहिन बहुत-से पादरियों के सिफारिषी पत्र लेकर उस आश्रम में पहुंची, जहाँ उसने निवास ग्रहण कर रखा था।

उन्होंने इच्छा प्रकट की कि वह केवल एक पल बेटे और भाई को देख लें, मगर उसने उनके सामने आने तक से इन्कार कर दिया। सेन्ट मारकस (डंतबने) की मां उससे मिलने के लिए उसके आश्रम में गई और मठाधीश एबोट (।इइवज) की खुशामद करके उसको राजी किया कि वह बेटे को माँ के सामने आने का आदेश दे। मगर बेटा किसी तरह भी माँ से मिलना नहीं चाहता था। आखिर में उसने गुरु के आदेश का पालन इस प्रकार किया कि भेस बदलकर माँ के सामने गया और आँखे बन्द कर लीं। इस तरह न माँ ने बेटे को पहचाना, न बेटे ने माँ की सूरत देखी। एक और संत सेन्ट पोइमन (ेजण्चवमउमद) और उसके छः भाई मिस्र के एक बयाबानी आश्रम में रहते थे। वर्षों बाद उनकी बूढ़ी माँ को उनका मालूम हुआ और वह उनसे मिलने के लिए वहाँ पहुंची। बेटे माँ को दूर से देखते ही भागकर अपनी कुटिया में चले गए और दरवाजाबन्द कर लिया। मां बाहर बैठकर रोने लगी और उसने चीख-चीखकर कहा, "मैं इस बुढ़ापे में इतनी दूर चलकर सिर्फ तुम्हें देखने आई हूँ, तुम्हारा क्या नुकसान होगा। अगर मैं तुम्हारी सूरतें देख लूँ, क्या मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ?" किन्तु उन महापुरुषों ने दरवाजा नहीं खोला और माँ से कह दिया कि हम तुझसे खुदा के यहाँ मिलेंगे। इससे भी अधिक दर्दनाक किस्सा सेन्ट सीमिउन इस्ताइलाइटस (ेजण्ेपउमवद ेजलसलजमे) का है जो माँ-बाप को छोड़कर सत्ताईस वर्ष गायब रहा। बाप उसके गम में मर गया, माँ जीवित थी। बेटे के सिद्ध होने की

चर्चाएं जब दूर व नजदीक हर जगह फैल गई तो उसको पता चला कि वह कहाँ है। बेचारी उससे मिलने के लिए उसके आश्रम पर पहुँची, परन्तु वहाँ किसी स्त्री को प्रवेश की अनुमति न थी। उसने लाख निवेदन किया कि बेटा या तो उसे भीतर बुला ले या बाहर निकलकर उसे अपनी सूरत दिखा दे। मगर उस 'ईश-प्रेमी' ने साफ इन्कार कर दिया। तीन रात और तीन दिन वह आश्रम के द्वार पर पड़ी रही, और अन्ततः वही लेटकर उसने अपने प्राण त्याग दिए, तब सन्त जी निकलकर आए, माँ की लाश पर आँसू बहाए और उसकी मुक्ति के लिए प्रार्थना की।

ऐसी ही निर्दयता इन संतों ने बहनों के साथ और अपनी संतान के साथ दिखलाई। एक व्यक्ति ने म्यूटियस (डनजपने) का किस्सा लिखा है कि वह सम्पन्न व्यक्ति था। सहसा उसमें धार्मिक भाव जागा और वह अपने आठ वर्ष के इकलौते बेटे को लेकर एक आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ उसके आध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य था कि वह बेटे का प्रेम हृदय से निकाल फेंके। इसलिए पहले तो बेटे को उससे जुदा कर दिया गया, फिर उसकी आँखों के सामने एक समय तक तरह-तरह की सख्तियां उस अबोध बच्चे पर की जाती रहीं और उसका बाप सब कुछ देखता रहा। फिर आश्रम के गुरु ने उसे आदेश दिया कि इसे ले जाकर अपने हाथ से दरिया में फेंक दे। जब वह इस आदेश के पालन के लिए भी तैयार हो गया।

तो ठीक उस समय सन्तो ने बच्चे के प्राण बचाए, तो ठीक उस समय सन्तों ने बच्चे के प्राण बचाए, जब वह उसे नदी में फेंकने ही वाला था। इसके बाद स्वीकार कर लिया गया कि वह वास्तव में सिद्धावस्था को प्राप्त हो चुका है। मसीही सन्यास का दृष्टिकोण इस संबंध में यह था कि जो व्यक्ति ईश-प्रेम का इच्छुक हो, उसे चाहिए कि मानव-प्रेम के वे सारे बंधन काट दे जो दुनिया में उसको अपने माता-पिता, भाई-बहनों और बाल-बच्चों के साथ बांध रखते हैं। सेन्ट जीरूम कहता है कि चाहे तेरा भतीजा तेरे गले में हाथ डालकर तुझसे लिपटे, चाहे तेरी माँ अपने दूध का वास्ता देकर तुझे रोके, चाहे तेरा बाप तुझे रोकने के लिए तेरे लेट ही क्यों न जाए, फिर भी तू सबको छोड़कर और बाप के शरीर को रौंदकर एक आँसू बहाए बगैर सलीब के झण्डे की ओर दौड़ जा। इस मामले में निर्दयता ही धर्मपरायणता है। सेन्ट गिरीगोरी लिखता है कि एक नव युवक सन्यासी माँ-बाप का प्रेम दिल से न निकाल सका और एक रात चुपके से भागकर उसने मिल आया। ईश्वर ने इस गलती की सजा उसे यह दी कि आश्रम वापस पहुँचते ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका षव जमीन में दफन किया गया तो जमीन ने उसे स्वीकार नहीं किया। बार-बार कब्र में डाला जाता और जमीन उसे निकालकर फेंक देती। अन्ततः सेन्ट बैनेडिक्ट ने उसके सीने पर प्रसाद रखा, तब कब्र ने उसे स्वीकार किया। एक सन्यासी के बारे में लिखा है कि वह मरने के बाद तीन दिन यातनाग्रस्त रही कि वह अपनी माँ का प्रेम दिन से न निकाल सकी थी। एक संत की प्रशंसा में लिखा है कि उसने कभी अपने रिश्तेदारों के अलावा किसी के साथ निर्ममता नहीं दिखलाई।

5-अपने निकटतम संबन्धियों के साथ निर्दयता, क्रूरता और कठोर हृदयता दिखाने का जो अभ्यास करते थे उसके कारण इनकी मानवीय कोमल भावनाओं का अन्त हो जाता था और इसी का परिणाम था कि जिन लोगों से इन्हें धर्म संबंधी मतभेद होता था, उनके विरुद्ध ये अत्याचार को उसकी चरम सीमा तक पहुँचा देते थे। चौथी शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते मसीहियत में अस्सी-नव्वे सम्प्रदाय पैदा हो चुके थे। सेन्ट आगस्टाइन ने अपने जमाने में अठासी सम्प्रदाय गिनाए हैं। ये सम्प्रदाय परस्पर एक - दूसरे से अत्यन्त घृणा करते थे। इस घृणा की आग को भड़काने वाले भी सन्यासी ही थे और इस आग में अपने विरोधी गिरोहों को जलाकर भस्म कर देने की कोशिशों में भी सन्यासी ही आगे रहते थे। अस्कंदरिया इस साम्प्रदायिक संघर्ष का एक बड़ा अखाड़ा था वहाँ पहले ऐरियन सम्प्रदाय के बिशप ने अथानासियस की पार्टी पर हमला किया, उसके आश्रमों से कुमारी सन्यासिनियों को पकड़-पकड़कर निकाला गया।

उनको नंगा करके कंटीली टहनियों से पीटा गया और उनके शरीर को दागा गया, ताकि वे अपने विचारों को त्याग दे। फिर जब मिस्र में कैथोलिक दल को अधिकार प्राप्त हुआ तो उसने ऐरियन सम्प्रदाय के विरुद्ध यही सब कुछ किया, यहाँ तक कि, सम्भवतः स्वयं ऐरियस को भी विष देकर मार दिया गया। इसी अस्कंदरिया में एक बार सेन्ट साइरिल के शिष्य सन्यासियों ने बड़ा उपद्रव मचाया, यहाँ तक कि विरोधी दल की एक सन्यासिनी को पकड़कर अपने चर्च में

ले गए, उसे मार डाला, उसकी लाश की बोटी-बोटी नोच डाली और फिर उसे आग में झोंक दिया। रोम की स्थिति भी इससे कुछ भिन्न न थी। 366 ई 0 में पोप लिबेरियस (स्पइमतपने) के निधन पर दो दलों ने पोप पद के लिए अपने - अपने उम्मीदवार खड़े किए। दोनों के मध्य भीषण रक्तता हुआ, यहाँ तक कि एक दिन में केवल एक चर्च से 137 शव निकाले गए।

6-इस त्याग और ब्रह्मचर्य तथा सन्यास के साथ सांसारिक धन समेटने में भी कोई कमी नहीं की गई। पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ ही में हालत यह हो चुकी थी कि रोम का बिशप राजाओं की तरह अपने महल में रहता था और उसकी सवारी जब शहर से निकलती थी तो उसके ठाट-बाट रोम के राजा की सवारी से कम न होने थे। सेन्ट जीरूम अपने युग (चैथी शताब्दी के अन्तिम समय) में शिकायत करता है कि बहुत-से बिशपो के भोग अपनी भवयता में गवर्नरों के भोगो को लज्जित कर देते हैं। आश्रमों और चर्चों की ओर धन का यह प्रवाह सातवाँ शताब्दी (कुरआन अवतरण के समय) तक पहुँचते-पहुँचते सैलाब का रूप धारण कर चुका था। यह बात प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में बिठा दी गई थी कि जिस किसी से कोई बड़ा पाप हो जाए, उसकी मुक्ति किसी न किसी सिद्ध के मठ पर भेंट चढ़ाने अथवा किसी आश्रम या चर्च को भेंट देने ही से हो सकती है। इसके बाद वही दुनिया सन्यासियों के पाँवों में आ गई जिससे दूर रहना ही उनकी प्रमुख विशेष रूप से जो चीज इस पतन का कारण बनी वह यही थी कि सन्यासियों की असाधारण तपस्याएं और उनके आत्म-दमन के चमत्कार देखकर जब जनता में उनके लिए अत्यधिक आस्था पैदा हो गई तो बहुत से दुनियादार लोग सन्यास का भेष धारण कर। सन्यासियों के गिरोह में शामिल हो गए और उन्होंने संसार-त्याग के इस भेष में दुनिया कमाने का काराबोर ऐसा चमकाया कि बड़े-बड़े दुनियादार उनसे मात खा गए। 7-पाकदामनी के संबंध में भी प्रकृति से लड़कर सन्यास को बार-बार पराजित होना पड़ा, और जब पराजित हुआ तो बुरी तरह पराजित हुआ। आश्रमों में आत्म-दमन के कुछ अभ्यास ऐसे भी थे।

जिनमें सन्यासी पुरुष और सन्यासी स्त्रियां मिलकर एक हर जगह रहते थे और प्रायः कुछ अधिक अभ्यास के लिए एक ही बिस्तर पर रात व्यतीत करते थे। प्रसिद्ध संयासी सेंट इवागिरियस बड़ी प्रशंसा के साथ फलस्तीन के उन सन्यासियों के आत्म-नियंत्रण का उल्लेख करता है जो अपनी वासनाओं पर इतना काबू पा गए थे कि स्त्रियों के साथ एक ही जगह स्नान करते थे और उनको देखने से उनके स्पर्श से, यहाँ तक कि उनके आलिंगन से भी उनके ऊपर प्रकृति को विजय प्राप्त नहीं होती थी। यद्यपि स्नान सन्यास में अत्यंत अप्रिय था, किन्तु आत्म-दमन के अभ्यास के लिए इस प्रकार के स्नान भी कर लिए जाते थे। अन्ततः उसी फलस्तीन के सम्बन्ध में नीसा का सेंट गिरीगोरी (मृत्यु 396 ई 0) लिखता है कि वह दुश्चरित्रता का गढ़ बन गया है। मानव-प्रकृति कभी भी उन लोगो से प्रतिशोध लिए बगैर नहीं रहती जो उससे संघर्ष करते हैं। संयास उससे लड़कर अन्ततः अनैतिकता के जिस गढ़े में जा गिरा उसकी कहानी आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी ई 0 तक के धार्मिक इतिहास का अत्यन्त कुरूप कलंक है। दसवीं शताब्दी का एक अतालवी बिशप लिखता है, " अगर चर्च में धार्मिक सेवाएं करने वालों के विरुद्ध कुकर्मों की सजाओं का कानून व्यवहारतः लागू कर दिया जाए तो (नागालिग) लड़कों के अतिरिक्त कोई सजा से न बच सकेगा और अगर अवैध बच्चों को भी धार्मिक सेवाओं से निलम्बित कर देने का नियम लागू किया जाए तो शायद चर्च के सबकों में कोई लड़का तक बाकी न रहे।" मध्य युग के लेखकों की पुस्तकें इन शिकायतों से भरी हुई हैं कि सन्यासियों के आश्रम कुकर्म के वैष्यालय बन गए हैं, उनकी चार दीवारियों में नवजात बच्चों का कत्लेआम हो रहा है। पादरियों और चर्च के धार्मिक कर्मचारियों में उन स्त्रियों तक से अवैध संबंध स्थापित हो गए हैं जिन स्त्रियो से किसी भी हालत में विवाह नहीं हो सकता, और आश्रमों में प्रकृति के विरुद्ध अश्लील कर्म जैसे अपराध भी फैल गए हैं। चर्चों में अपराध स्वीकृति की रीति कुकर्म का साधन बनकर रह गई है।

इन विवरणों से भली प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि कुरआन मजीद यहाँ धर्म में सन्यास जैसी नई चीज दाखिल करने और फिर उसका हक अदा न करने का वर्णन करके मसीहियत के किस बिगाड़ की ओर संकेत कर रहा है।